International Journal of Applied Research 2017; 3(5): 911-912

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(5): 911-912
www.allresearchjournal.com
Received: 13-03-2017
Accepted: 18-04-2017

डॉ. सुशील निम्बार्क
सह आचार्य चित्रकला, राज मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. सुशील निम्बार्क
सह आचार्य चित्रकला, राज मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

दृश्यात्मक कला परम्परा में भित्ति चित्र

डॉ. सुशील निम्बाक

प्रस्तावना

दृश्यात्मक कला के वैविध्य, विकास और समृद्धि में जितना महत्त्वपूर्ण योगदान मूर्ति–शिल्प का रहा, उतना अथवा कहीं उससे भी अधिक चित्रकला का देखा जाता है। राजस्थान की मूर्तिकला के उत्कृश्ट नमूनों के केन्द्र के रूप में प्रायः सम्पूर्ण प्रदेश अपनी ख्याति रखता है। तथापि आंबानेरी, अटरू, आबू, नागदा, चित्तौड़गढ़, किराडू, ओसियां, सीकर, बाड़ौली, अर्थूना, उदयपुर का जगदीश मन्दिर, मेवाड़ की प्रसिद्ध राजसमन्द झील का नो–चौकी बाँध, जगत का अम्बिका मन्दिर तो विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे हैं। यहाँ की देवी–देवताओं की मूर्तियों और बेल–बूटों वाली तक्षण कला के अलावा नारी अंकन में रति–मग्न युगल, जन–जीवन के नाना दृश्य, युद्ध–प्रसंग, सैन्य–प्रयाण, खेल–कूद, मनोरंजन, विवाह–उत्सव, स्त्री–प्रसव आदि अनेक सांसारिक दृश्यों की अवतारणा हुई है। नारी–गत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में वात्सल्य और प्रेम की अभिव्यंजना चरमोत्कर्श पर देखी जा सकती है।

राजस्थानी चित्रकला का आरम्भिक रूप, जैसा कि हमें चित्रित ग्रन्थों के रूप में उदित होता मिलता है, आगे चलकर लघुचित्रों के स्तर पर विकास की तीव्र धारा में बदलता दिखाई देता है। उत्तरोत्तर ज्यों–ज्यों चित्रकला का माध्यम विकसित हुआ, जैसे कपड़ा, चमड़ा, केन्वास, काष्ठ–पट्ट, धातुओं की परतें आदि, इन माध्यमों में सर्वाधिक प्रशस्त, टिकाऊ एवं उपयोगी माध्यम मुख्य–प्रमुख भवनों, हवेलियों, मन्दिरों, स्मारकों की दीवारों के अवलोकनीय स्थल बने। ये भित्ति–स्थल चित्रकार की तूलिका के लिये ऐसी रंग–भूमि (फलक) बनते देखे गये, जहाँ वह एक नर्तकी की तरह अपने मुक्त हाव–भाव और भंगिमा के अपार अवसरों का प्रदर्शन करती दर्शकों को रिझाने लगी और आज भी अपनी ऊह्य अदाओं से रिझा रही है।

राजस्थान के भित्ति–चित्रों का विकास प्रदेश में सभी जगह एक जैसा पाया जाता है, लेकिन इसके आरम्भिक विकास की जो स्थिति शेखावाटी क्षेत्र में मिलती है, वह अपूर्व ही कही जा सकती है। समीक्षाकार लिखते हैं कि शेखावत ठाकुरों ने अपने अधीनस्थ गाँवों में से कुछ को नगरीय स्वरूप प्रदान करने के प्रयास में धनाधीशों को लाकर वहाँ बसाया। यह समय 16 वीं सदी का प्रारम्भ था। धनाढ्यों ने अनेक हवेलियों, छत्रियों, बावलियों का निर्माण करवाया और उन्हें सुरम्य चित्रों से अलंकृत भी करवाया। ठाकुरों ने भी तब प्रेरणा पाकर अपने दुर्गों–महलों के सुन्दर निर्माण करवाये और उनकी दवारों को चित्रों से सुसज्जित करवाया। इस प्रकार शेखावटी क्षेत्र में व्यापक स्तर पर भित्तिचित्रों की रचना–परम्परा का उदय हुआ। माना जाता है कि इसी समय कायमखानी नबाब, फतेखाँ, शम्सखाँ इस क्षेत्र में नारनोल की ओर से आये, जिन्होंने भव्य दुर्गों का निर्माण करवाकर उनकी दीवारों को चित्रकारिता से अलंकृत करवाया। फतेह खान के साथ कई हिन्दू लोग भी थे, जो विभिन्न पदों पर कार्यरत थे। उन लोगों में तुहिनमल सरावगी भी था, जिसने किलों और दुर्गों से पहले अपनी हवेलियाँ और मन्दिर बनवाये। झुंझनू में भी महल बनाना आरम्भ हो चुका था। इस तरह इस क्षेत्र में अन्य अनेक आवासीय हर्म्य और दुर्ग की निर्माण–परम्परा और खासकर उनकी दीवारों की चित्रमय साज–सज्जा की शुरूआत हो चुकी थी। यही कारण है कि राजस्थान के भित्तिचित्रों की परम्परा में शेखावाटी क्षेत्र का सर्वोपरि स्थान बना रहा।

भित्तिचित्र की परम्परा

राजस्थानी चित्रकला के विकास में अन्य चित्रों की भाँति भित्तिचित्रों का भी बहुत बड़ा योगदान परिलक्षित होता है, और खासकर लोकजीवन के यथार्थ चित्रण में तो बहुत ही प्रशस्तता दिखाई देती है। बहुत कम ही ऐसे राजभवन अथवा हर्म्य–हवेलियाँ होंगी, जिनकी दीवारें चित्रांकन से सजी हुई नहीं देखी जातीं। इसी तरह देवालय और देवमन्दिर, स्मारक एवं छतरियाँ भी चित्रकला से सजी–धजी मिलती हैं। दीवारें नानाविध–लौकिक–अलौकिक चित्रों से अलंकृत हैं। रंग इतने पक्के हैं कि बरसों बाद भी उनकी चमक वैसी की वैसी है।

भित्तिचित्रों की राजस्थानी परम्परा की शुरूआत कब से हुई, इसकी न कोई प्रामाणिक सुस्पष्ट सूचना मिलती है, और न ही ऐसा कोई तिथि–युक्त भित्तिचित्र प्राप्त हुआ है, जिसे आधार बनाकर भित्तिचित्र के आरम्भ का विवरण दिया जा सके। तथापि उसकी आरम्भिक स्थिति की जानकारी उन मृद्भाण्डों की चित्रित ठीकरियों से तो ली ही जा सकती है, जो हजारों वर्ष पूर्व राजस्थान के विभिन्न पुरातात्त्विक टीलों के उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। इन बहुविध अलंकरणों के बेलबूटों से सुसज्जित मृद्भाण्डों की ठीकरियाँ ही भित्तिचित्रों की आधार रही होंगी, ऐसा माना जा सकता है।

इस दिशा में कतिपय प्रमाण हमारे प्राचीन साहित्य में भी मिलते हैं। इस दृश्टि से महाभारत, वाल्मीकिरामायण, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र तथा कालिदास की काव्य–रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। महाभारत और वाल्मीकिरामायण का समय ईसा पूर्व छहसौ–पाँचसौ वर्ष माना जाता है। महाभारत में सत्यवान के बारे में बताया गया है कि उसे बचपन में घोड़ों का शौक था और वह वन में अपने माता–पिता के साथ रहते हुए मिट्टी के घोड़े बनाता था। भित्ति पर भी घोड़ों के चित्र अंकित करता था। इसी कारण बचपन में उसका नाम 'चित्राश्व' पड़ गया था।

वाल्मीकिरामायण भी इस दृश्टि से उल्लेखनीय है। वहाँ दीवारों, कक्षों, रथों तथा राजभवनों पर चित्रांकन के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। सुन्दरकाण्ड और लंकाकाण्ड में चित्रशालाओं के विवरण इस दृश्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का समय प्रथम शताब्दी ई. पू. माना गया है। इस ग्रन्थ में नाट्यशाला को अलंकृत करने के उद्देश्य से उसकी भित्तियों पर नर–नारी की मूर्तियों, बेल–बूटों और अन्य अनेक मनोरम दृश्यों को अंकित करने का परामर्श मिलता है।

भित्तिचित्रों की परम्परा को आगे बढ़ाने में संस्कृत के महाकवि कालिदास का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। कालिदास की कल्पना के पंखों ने अपनी तरह से उड़ानें भरी हैं। इसलिये उनकी कविता कविता होकर भी चित्र के समीप अधिक प्रशंसनीय मानी जाती है।

एक प्रसंग है – राम इस दुनिया में नहीं रहे। उत्तराधिकारी कुश अयोध्या छोड़कर अपनी नई राजधानी 'कुशवती' नामक नगरी में रहने और शासन करने लगा। एक दिन आधी रात को, जब सब सो चुके, कुश भी सोने लगा। लेकिन उसे नींद नहीं आई। शयनागार में दीपों का मद्धिम प्रकाश है। उस शान्त वातावरण में एक प्रोशितपतिका युवती का वहाँ अनायास प्रवेश होता है। कुश उसे देखकर आश्चर्य–चकित है। दरवाजा, खिड़कियाँ सब बन्द हैं, वह शयनागार में कहाँ से, कैसे आई, यह कुश सोचता है। कुश की जिज्ञासा को शान्त करती युवती बताती है कि राजन् ! मैं अयोध्या की भाव–छवि हूँ, जो राम के छोड़ चले जाने पर दिन–दिन उजड़ रही हूँ। आपसे निवेदन करने आई हूँ कि आप पुनः आयोध्या में आ जाएँ, आपके आगमन से यह नगरी फिर से आबाद हो सकेगी, इसे उजड़ने न दें।

कालिदास की इस कल्पना में अयोध्या की उजड़ती स्थिति के कई दृश्य अंकित हैं। उन दृश्यों में एक दृश्य कमल वन में केलि–रत हाथी–हथनियों का भी है। दूसरा दृश्य राजमहलों के कलात्मक स्तम्भों का है, जिनपर नारियों का सुन्दर रूपांकन हुआ है। पहले चित्र में बताया गया है कि कमलवन में हाथी हथनियों के साथ केलि–रत हैं। चित्र आकर्शक और इतना सजीव है कि उन मदमत्त हाथियों को सचमुच के हाथी समझकर उनपर जंगली सिंह आक्रमण करने लगे हैं। अयोध्या–सुन्दरी चाहती है कि उन हाथियों के चित्रों को सिंहों के आक्रमणों से बचाया जाए, अन्यथा वह चित्र–सम्पदा नष्ट हो जाएगी। कालिदास की इस कल्पना में अयोध्या के राजमहलों में बने चित्र में हाथियों के सजीव चित्रण की विशेशता तो है ही, हाथियों और हथनियों के आकार की विशालता भी उल्लेखनीय है, जिन्हें जंगली सिंह साक्षात् हाथी समझने के भ्रम में आ जाते हैं। कालिदास की यह कल्पना राजभवन की दीवारों की चित्रांकन–परम्परा का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करती है।

संदर्भ

1. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास
2. अविनाश बहादूर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास 1965
3. रायकृष्णदास भारत की चित्रकला, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी 1939
4. टेम्पल्स ऑफ राजस्थान, प्रकाश पब्लिशर जयपुर 1969